पेरिस–गाजियाबाद
अगस्त २०, २००७

सन्देश संख्या १२३

दूरभाष पर सत्संग

आज गुरु और शिष्य के बीच हो रहे दूरभाष–वार्ता के दौरान स्वतःस्फूर्त्त सत्संग हुआ । गुरु अपने अमेरिकी–कार्यक्रम प्रारम्भ करने के क्रम में हवाई–अड्डा के लिए निकलने ही वाला था । उसके पास इसे लिपिबद्ध करने का समय नहीं था । अतः उसने शिष्य को इसे सन्देश १२३ के रूप में लिपिबद्ध कर, उसकी अन्तहीन यात्रा जिसमें गति और विश्रान्ति के मध्य द्वैत समाप्त हो चुका है, के अगले पड़ाव पर भेज देने का अनुरोध किया । यहाँ, गति एक अद्‌भुत विश्रान्ति है और विश्रान्ति एक रहस्यपूर्ण गति है ।

हाल ही का उदाहरण है कि एक क्रियावान के शरीर में मन का हस्तक्षेप उसके समर्पण पर हावी हो गया और रक्षक भक्षक बन गया । पूर्व में वह शरीर समझदारी का स्पर्श पा चुका था किन्तु तब भी 'संसार'–चक्र ने समझदारी को रौंद डाला ।

यदि किसी शरीर में समझदारी घटित हो जाती है, तब भी उसे हमेशा के लिए सुनिश्चित नहीं माना जा सकता । मन की आसक्ति के प्रति हमेशा सावधान और सजग रहने की आवश्यकता है । चूहा–सदृश चंचल मन को व्यक्ति के शरीर में स्थित गणेश अर्थात् चैतन्य के चरणों में रखने का यही एक उपाय है ।

जब तक शरीर में श्वास है तब तक विभाजन (अर्थात् अहंकार) बना रहेगा और मन भी रहेगा । किन्तु उसके हस्तक्षेप को रोकने के लिए सजगता की आवश्यकता है – बस । तब मन न केवल (शांत) हो जाता है बल्कि एक शक्तिशाली साधन बन जाता है । यदि मस्तिष्क तीक्ष्ण हो और बुद्धि मानसिक पंजीकरण से मुक्त होकर कार्य कर सके, तब द्वैत का विभेद समाप्त हो जाता है। और तब बहिर्जगत का ''दो'' और अन्तर्जगत का ''एक भी नहीं'' बिना किसी विरोध के साथ–साथ रहते हैं ।

स्वतःस्फूर्त्त सत्संग में गुरु ने कहा : ''अहंकार की बहिर्जगत की चिन्ता 'धारा' (ऊर्जा–क्षरण की धारा) है जबकि 'राधा' अन्तर्जगत की सजगता (शक्ति अर्थात् ऊर्जा–संचय) है । संस्कृत भाषा में लिखने पर राधा धारा का उल्टा है । चैतन्य (कृष्ण) जिससे जीवित शरीर युक्त होता है, का आन्तरिक बोध ही राधा है ।

यह बार–बार और कई बार कहा गया है । श्रवण प्रक्रिया अनुबन्धनों पर आधारित होने के कारण विकल्प उत्पन्न होता है और जो स्वीकार्य होता है उसे ग्रहण किया जाता है तथा जो स्वीकार्य नहीं होता उसे छोड़ दिया जाता है । इसलिए शब्दों के मर्मार्थ पर मनन होता ही नहीं, केवल सुविधाजनक निष्कष निकाल लिया जाता है और जो पहले से ज्ञात है उसी के अनुरूप, चालाकी से गुरू के शब्दों का अर्थ ढूँढ लिया जाता है । पूर्वाग्रहों के दबाव में सुनना, ''ज्ञातातीत'' की प्रज्ञा में होने के लिए ''मैं'' से मुक्ति नहीं है, बल्कि वह तो ''मैं'' को और मजबूती प्रदान करता है।''

आज ही, गुरु की शून्यता से उत्पन्न १२२वें शिशु अर्थात् सन्देश संख्या १२२ को पढ़ते समय निम्नलिखित शब्दों पर इस शरीर का ध्यान गया :–

''बार–बार हो आवृत्ति
श्वासों के मध्यान्तराल के आनन्द हेतु ।
प्रत्येक आवृत्ति पर सीखो आनन्दित होना ।''

क्रिया की उच्चतर–अवस्था में भी क्रिया–प्राणायम अवश्य जारी रहना चाहिए । समझदारी की अवस्था में होने पर भी, उस कृपा को सदा के लिए सुनिश्चित नहीं मानकर क्रिया–प्राणायाम करते रहना चाहिए । यह कृपा है, यह घटित होती है किन्तु केवल शून्यता में ही घटित होती है । हमेशा उत्तेजना में रहनेवाले अव्यवस्थित और भ्रान्त मन में राधा से धारा अर्थात् आशीर्वाद से श्राप की गति को तब तक नहीं जाना जा सकता जब तक कि पतन घटित न हो जाय। गुरु कहते हैं कि सदा सजगता की अग्नि में रहो । इस अग्नि की ज्वाला को क्रिया–प्रणायाम अर्थात् गुरु–प्रक्रिया से जलाये रखो । क्रिया प्राणायाम ही गुरु है ।

गुरु–ऊर्जा की कृपा सभी शरीरों पर बनी रहे ।

।। जय क्रिया प्राणायाम ।।